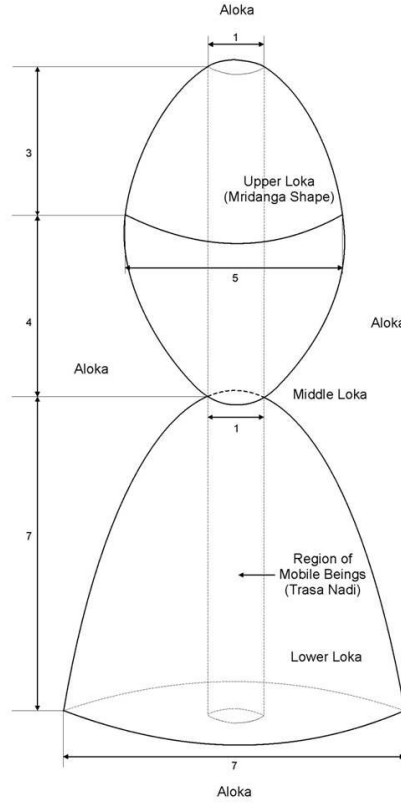


लोक

डॉ. नारायण लाल कछारा

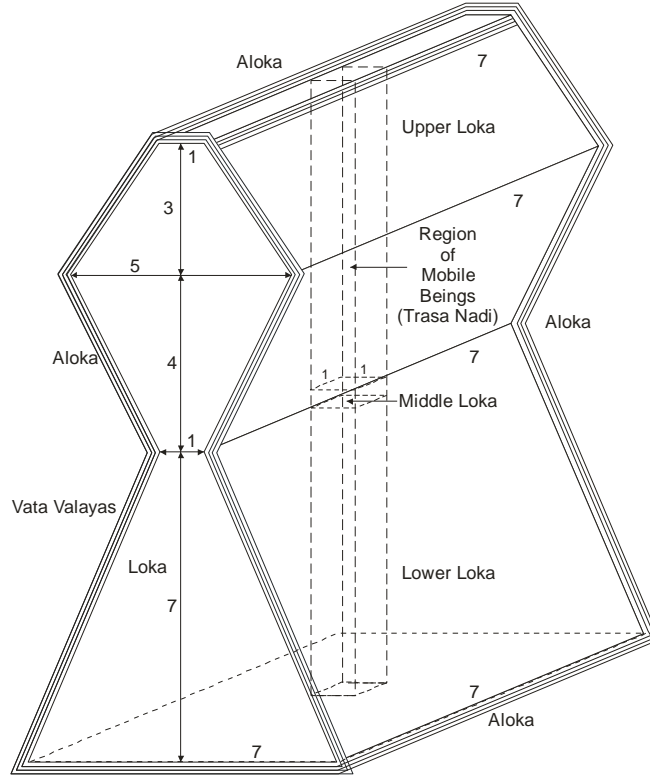
जैन दर्शन में लोक

अनन्त—असीम आकाशके बहुमध्यभाग में स्थित सान्त—ससीम 'लोक' का निश्चित आकार माना गया है। लोक सुप्रतिष्ठित संस्थान वाला है अर्थात् त्रिशरावसंपुटाकार है। एक शराव उल्टा रखकर उस पर एक शराव सीधा और फिर उस पर एक शराव उल्टा रखने पर त्रिशराव संपुट की आकृति बनती है। यही लोक की आकृति है। यह आकार में नीचे से विस्तीर्ण, मध्य में संकरा और उपर विशाल एवं अंत में संकरा होता है। अधोलोक पर्यक संस्थान वाला या तप्रसंस्थान वाला है। मध्यलोक झल्लरी, वरव्रज एवं उर्ध्व किए गये मृदंग के आकार वाला बताया गया है। इस मान्यता के अनुसार लोक की ऊंचाई 14 राजू हैं। अधोलोक कुछ कम सात राजू विस्तीर्ण है। तिर्यकलोक एक राजू, ब्रह्मलोक 5 राजू और लोकान्त के पास एक राजू विस्तीर्ण है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।



लोक खड़े—खड़े मंथन करते हुए ऐसे पुरुष के आकार वाला है। जिसके पैर फैले हुए हैं, दोनों हाथ कटि भाग पर स्थित हैं। लोक पुरुष के दोनों पैरों के स्थान में अधोलोक है। उसके कटिस्थानीय ज्योतिश्चक्र है। उसकी कोहनी स्थानीय ब्रह्मलोक है और मस्तक का तिलक सिद्धशिला है। अलोक का संस्थान शुषिरगोलक है। वैसा गोला जो मध्य में पोलारयुक्त है। लोक की ऊंचाई चवदह राजू है। अधोलोक कुछ कम सात राजू विस्तीर्ण है। तिर्यकलोक एक राजू, ब्रह्मलोक पाँच राजू और लोकांत के पास एक राजू विस्तीर्ण है। स्वयंभू रमण पूर्व से पश्चिम वेदिकांत तक एक राजू परिमाण है। लोक का आयतन 343 धनराजू माना गया है। (एक राजू का मान लगभग 1.15×10^{21} मील आंका गया है।)

लोक के आकार और आयतन के विषय में जैन साहित्य में गणितीय विवेचन मिलता है, किन्तु दिगम्बर परंपरा और श्वेताम्बर परंपरा में यह विवेचन भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है। दिगम्बर परंपरा के अनुसार लोक के तीन परिमाणों (ऊँचाई, लंबाई, चौड़ाई) में से प्रथम परिमाण अर्थात् ऊँचाई 14 राजू है। लोक के विभिन्न स्थानों पर लोक की लम्बाई भिन्न-भिन्न है। इसको समझने के लिए लोक के (ऊँचाई के प्रमाण से) दो विभागों की कल्पना करनी चाहिए। अर्थात् लोक के दो भाग करने चाहिए, जिसमें से प्रत्येक भाग की ऊँचाई 7 राजू हो। इन दो भागों में से, प्रथम अधस्तन भाग (अधोलोक) नीचे (आधार पर) 7 राजू लम्बा है और ऊपर कमशः घटता-घटता 1 राजू है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई 7 राजू है और नीचे 1 राजू, बीच में 5 राजू और ऊपर 1 राजू है। लोक का तीसरा परिमाण चौड़ाई सर्वत्र 7 राजू है। इस परिमाण के अनुसार अधोलोक का घनफल 196 घन राजू है और ऊर्ध्वलोक का घनफल 147 घन राजू है। इस प्रकार समग्र लोक का घनफल 343 घन राजू है।



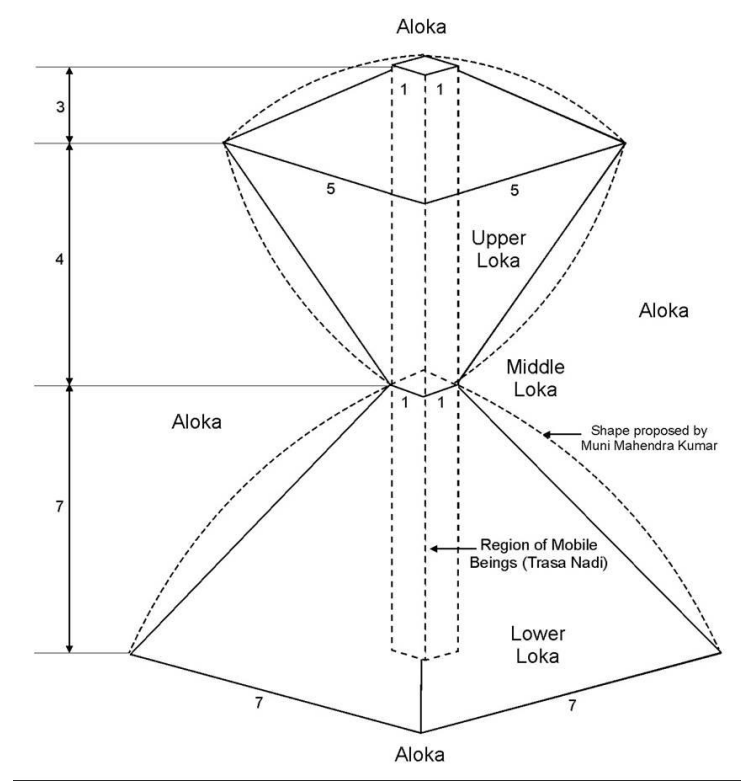
सम्पूर्ण लोक को वेष्टित करने वाले तीन वातवलय हैं। लोक को वेष्टित करते हुए धनोदधि वातावलय है फिर उसके बाद घनवातवलय है और अन्त में तनुवातवलय है। धनोदधि वातवलय का वर्ण गोमूत्र के सदृश है, घनवातवलय का वर्ण मूंग के सदृश है, तनुवातवलय अनेक प्रकार के रंगों को धारण किए हुए है। (कुछ आचार्यों के अनुसार यह पंचवर्ण वाला है)। इसमें से प्रथम धनोदधि वातवलय लोक का आधार है। धनोदधि वातवलय का आधार घनवातवलय है, और घनवातवलय का आधार तनुवातवलय है। अंत में तनुवातवलय आकाश के आधार पर है एवं आकाश निज आधार पर है।

लोकाकाश के अधोभाग में दोनो पार्श्व भागों में नीचे से लगाकर एक राजू की ऊँचाई पर्यन्त तथा आठों भूमियों के नीचे तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटाई वाले हैं। दोनो पार्श्व भागों में राजू से उपर सप्तम पृथ्वी के निकट धनोदधि वातवलय 7 योजन, घनवातवलय 5 योजन और तनुवातवलय 4 योजन

मोटाई वाले हैं। इस सप्तम पृथ्वी के ऊपर क्रम से घटते हुए तिर्यकलोक के समीप तीनों वातवलय क्रम से 5,4,3 योजन बाहुल्य वाले तथा वहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रम से बढ़ते हुए सप्तम पृथ्वी के निकट-सदृश 7,5,4 योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं तथा ब्रह्मलोक के क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों वातवलय उर्ध्व लोक के निकट तिर्यकलोक सदृश 5,4,3 योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं। लोक के शिखर पर पवनों का परिमाण क्रमशः 2 कोश, 1 कोश और 1 से कुछ कम कोश हैं। लोक के अग्रभाग पर घनोदधिवातवलय की मोटाई 2 कोश, धनवातवलय की 1 कोश और तनुवातवलय की 1 से कुछ कम कोश है।

श्वेताम्बर परंपरा के आगम साहित्य में यद्यपि लोक आयाम, विष्कम्भ आदि के बारे में विस्तृत गणितीय विवेचन उपलब्ध नहीं है, फिर भी उतरवर्ती-ग्रंथों में जो विवेचन किया गया है उसके अनुसार लोक की ऊंचाई 14 राजू है। दूसरा परिमाण लम्बाई और तीसरा परिमाण चौड़ाई विभिन्न ऊंचाईयों पर भिन्न-भिन्न हैं और समान ऊंचाई पर समान हैं जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

लोक की चौड़ाई सर्वत्र सात राजू की स्थापना धवलाकार आचार्य वीरसेन की मौलिक देन है। इसी मान्यता को अधिक पुष्ट प्रमाण मिले हैं और अधिकांश विद्वानों ने इसको स्वीकार किया है। उस समय सम्भवतः श्वेताम्बर आचार्यों में मृदंगाकार लोक की कल्पना प्रचलित थी, इसका उल्लेख धवला में किया गया है। किन्तु इस मान्यता में गणितीय दृष्टि से यह त्रुटि थी कि लोक का समग्र घनफल 343 घन राजू से बहुत कम था। वीरसेनाचार्य ने दो प्राचीन गाथाओं के आधार पर यह बताया कि लोक का घनफल अधोलोक में 196 घनराजू और उर्ध्वलोक में 147 घनराजू होना चाहिए। उन्होंने बताया कि यह तभी संभव है जब लोक की चौड़ाई सर्वत्र 7 राजू मान ली जाय।



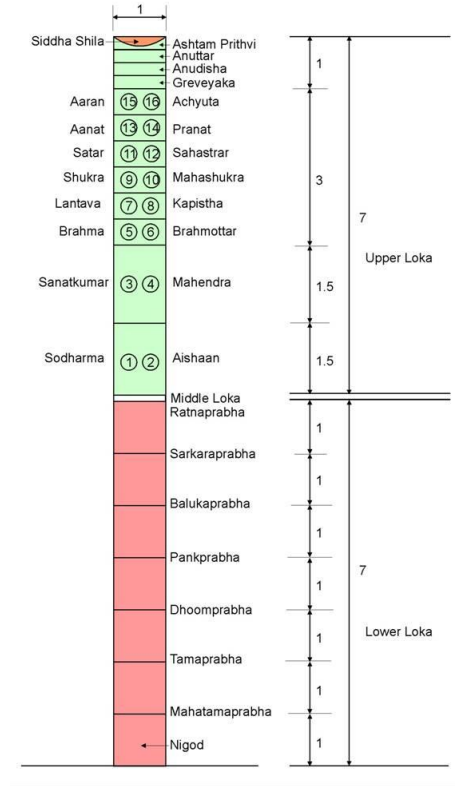
श्वेताम्बर-परम्परा में लोक के विषय में मूल मान्यताओं में उपरोक्त मान्यताओं के अतिरिक्त इन मान्यताओं का भी समावेश होता है:

1. लोक का आयाम – विषकम्म (लम्बाई–चौड़ाई) समान ऊंचाई पर समान होनी चाहिए।
2. लोक की लम्बाई – चौड़ाई में उत्सेध की अपेक्षा क्रमिक वृद्धि–हानि होनी चाहिए। अर्थात् लोक के ठीक मध्य में स्थित 1 राजू आयाम–विषकम्म वाले शुल्लक प्रतर से अधोलोक की ओर जाने पर अधोमुखी तिर्यक् वृद्धि (लम्बाई–चौड़ाई में वृद्धि), उर्ध्व लोक की ओर जाने पर अर्ध्व मुखी तिर्यक् वृद्धि और ब्रह्म लोक के पास जहाँ लोक का बाहुल्य (लम्बाई– चौड़ाई) 5 राजू है, वहाँ से उपर जाने पर उर्ध्वमुखी तिर्यक् हानि होती है।

लोक का कुल आयतन 343 घनराजू है, जिसमें अधोलोक का घनफल 196 घनराजू और उर्ध्वलोक का घनफल 147 घनराजू है, इस मान्यता का उल्लेख भी श्वेताम्बर ग्रन्थों में है। किन्तु इसको सिद्ध करने की कोई भी गणितीय विधि वहाँ उपलब्ध नहीं होती है। यदि आधुनिक गणितीय विधियों में उक्त समस्या का अध्ययन किया जाये, तो ऐसा समाधान निकल सकता है, जो उल्लिखित मूल मान्यताओं के साथ संगत हो और उसमें गणितीय विधियों की पूर्णता भी सुरक्षित रहे। मुनि महेन्द्र कुमार ने गणितीय विधि से बताया कि यदि चित्र में अधोलोक और उर्ध्वलोक में लोक भी बाहारी सतहों को सपाट के स्थान पर वक्राकार मान लिया जाय तो अधोलोक का घनफल 196 राजू, उर्ध्वलोक का घनफल 147 घनराजू और लोक का घनफल 343 घनराजू संभव हो जाता है।

त्रसनाड़ी

तीनों प्रकार के लोक के मध्य में त्रस नाडी की स्थिति मानी गई है। यह त्रस नाडी 14 राजू ऊंची है और सर्वत्र 1 राजू विस्तार वाली है। त्रस जीव केवल त्रस नाडी में ही निवास करते हैं, त्रस नाडी के बाहर लोक में केवल निगोदिया जीव रहते हैं। त्रस नाडी तीन भागों में विभक्त है यथा (1)अधोलोक (2)मध्यलोक (3)उर्ध्वलोक। इन तीनों लोक का विवरण इस प्रकार है।



त्रसजीव लोक के निश्चित अंश में पाये जाते हैं। जिस अंश में त्रसजीव पाये जाते हैं उस लोक को त्रसनाड़ी कहते हैं। त्रसनाड़ी लोकाकाश के बहुमध्य प्रदेश में अर्थात् बीचों बीच है। यह त्रसनाड़ी 1 राजू लम्बी, 1 राजू चौड़ी और 14 राजू ऊँची है। त्रसनाड़ी का घनफल 14 घन राजू है और लोक का परिमाण 343 घन राजू है। इस प्रकार शेष 329 घन राजू में मात्र स्थावर जीव ही पाये जाते हैं, त्रस नहीं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर त्रसनाड़ी 13 राजू ही ऊँची है क्योंकि सातवें नरक के नीचे 1 राजू परिमाण क्षेत्र में निगोदिया जीव ही रहते हैं। सर्वार्थसिद्धि विमान के ऊपर 8 योजन मोटी ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी में भी त्रसजीव का अभाव है। अतः लगभग 330 घनराजू स्थावर लोक है।

अधोलोक

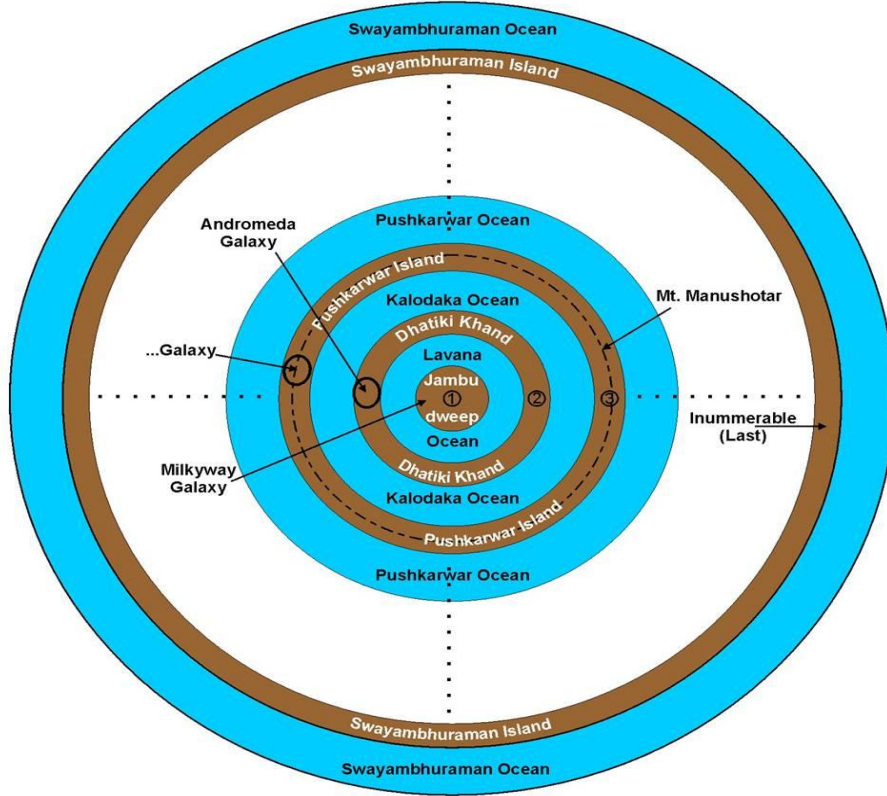
अधोलोक में सात पृथ्वियां हैं—रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुकाप्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा, तमः प्रभा और महातम प्रभा। ये सातों ही पृथ्वियां एक-एक राजू अन्तर पर स्थित हैं। मध्यलोक और प्रथम पृथ्वी के बीच कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् प्रथम पृथ्वी का उपरिम भाग मध्यलोक है। प्रथम पृथ्वी से एक राजू के अन्तर पर दूसरी पृथ्वी है। इसी प्रकार तीसरी आदि पृथ्वियां एक-एक राजू के अन्तराल पर हैं। रत्न प्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं (1) खरभाग (2) पंकभाग (3) अब्बहुल भाग। खर भाग 1600 योजन मोटा है, पंक भाग 84000 योजन मोटा है और अब्बहुल भाग 80000 योजन मोटा है। शर्करा प्रभा पृथ्वी 32000 योजन, बालुका प्रभा पृथ्वी 28000 योजन, पंक प्रभा पृथ्वी 24000 योजन, धूमप्रभा पृथ्वी 20000 योजन, तमप्रभा 16000 योजन और महातम प्रभा 8000 योजन मोटी है। खरभाग में भवनवासी देव, पंक भाग में राक्षस तथा असुर कुमार देव (व्यंतर देव) और अब्बहुल भाग में नारकी निवास करते हैं। अन्य सभी पृथ्वियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नारकी रहते हैं।

उर्ध्वलोक

सामान्य दृष्टि से सुमेरु के तल भाग से लेकर लोकाकाश पर्यन्त अंश को उर्ध्वलोक कहते हैं। उर्ध्वलोक का उत्सेध 7 राजू परिमाण है। चारों प्रकार के देवों में केवल वैमानिक देव इस उर्ध्वलोक में वास करते हैं। अन्य तीनों प्रकार के देव मध्यलोक में वास करते हैं। 16 स्वर्गों के आठ युगल हैं। मेरु तल से डेढ़ राजू में सौधर्म-ऐशान, उसके ऊपर डेढ़ राजू में सानत्कुमार-माहेन्द्र, उसके उपर आधा-आधा राजू परिमाण में अन्य छहों युगल स्थित हैं। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित है। सोलह स्वर्ग के ऊपर एक राजू में नौ ग्रेवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान का अवस्थान है। सर्वार्थ सिद्धि विमान से लेकर लोक के अग्रस्थित तनुवातवलय पर्यन्त क्षेत्र को ईषत् प्राग्भार संज्ञा वाली अष्टम् पृथ्वी कहते हैं। इसकी चौड़ाई 1 राजू लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) 7 राजू एवं मोटाई 8 योजन प्रमाण है। इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय क्षेत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्ध क्षेत्र है, जिसके मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम से घटती हुई, अन्त में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश चौड़ी रह गई है। इस सिद्धक्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं।

मध्यलोक

मध्यलोक में जम्बुद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं। सबके बीच में थाली के आकार का जम्बुद्वीप है। उसके चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ धातकी खण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक दूसरे को घेरे हुए असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबके अंत में द्वीप का नाम स्वयं भूरमण द्वीप और अन्त में समुद्र का नाम स्वयं भूरमण समुद्र है। प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तारवाले, पहले पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए तथा चूड़ी के समान आकार वाले हैं।



धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थों की रचना जम्बूद्वीप से दूनी दूनी है। पुष्करार्द्ध द्वीप में भी जम्बूद्वीप की अपेक्षा सब रचना दूनी दूनी है। पुष्करवर द्वीप का विस्तार 16 लाख योजन है, उसके ठीक बीच में चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे इस द्वीप के दो हिस्से हो गये हैं। पूर्वार्ध में सब रचना धातकी खण्ड के समान है और जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। मानुषोत्तर पर्वत के पहले अर्थात् अढ़ाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करवर के पूर्वार्ध को मिलाकर अढ़ाई द्वीप होते हैं।) में ही मनुष्य होते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के आगे ऋद्धिधारी मुनिश्वर तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते। आर्य और म्लेच्छ के भेद से मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। जो अनेक गुणों से सम्पन्न हों तथा गुणी पुरुष जिनकी सेवा करे उन्हें आर्य कहते हैं। जो आचार विचार से भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्म-कर्म का कुछ विवेक न हो उन्हें म्लेच्छ कहते हैं। पाँच भरत, पाँच ऐरावत और देव कुरु – उत्तरकुरु को छोड़कर पाँच विदेह, इस तरह अढ़ाईद्वीप में कुल 15 कर्म भूमियाँ हैं। जहाँ पर असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मों की प्रवृत्ति हो उसे कर्म भूमि कहते हैं।

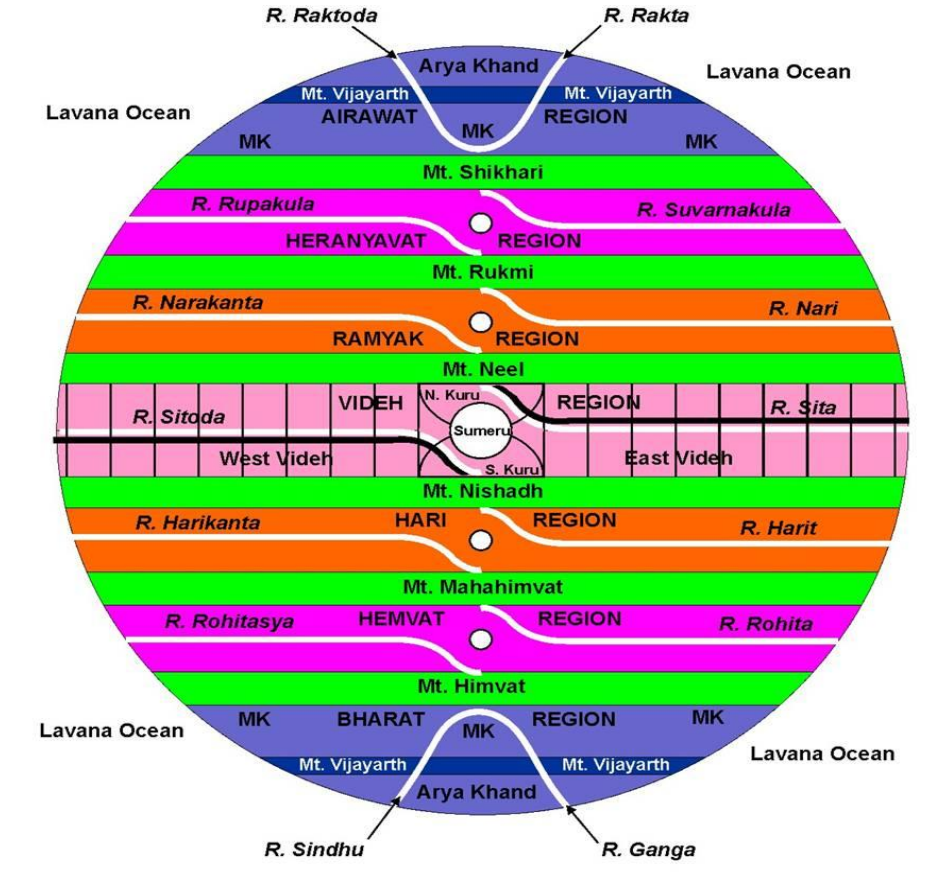
जम्बूद्वीप

सब द्वीप समुद्रों के बीच थाली के समान गोल और एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये क्षेत्र हैं। उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लंबे हिमवत् महाहिमवत, निषध, नील, रुक्मिन और शिखरिन् ये छह वर्षधर – कुलाचल पर्वत हैं। ये पर्वत क्रम से सुवर्ण, चांदी, तपा हुआ सुवर्ण, नील मणि, चांदी और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं। उन पर्वतों के उपर क्रम से पदम, महापदम, तिगिच्छ, केशरिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के हृद-सरोवर हैं। गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित् हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला और रक्ता, रक्तोदा ये चौदह नदियाँ जम्बुद्वीप के पूर्वोक्त सात क्षेत्रों के

बीच बहती हैं। भारत में गंगा-सिन्धु, हेमवत में रोहित – रोहितास्या, हरि में हरित-हरिकांता, विदेह में सीता-सीतोदा, रम्यक में नारी-नरकान्ता, हैरण्यवत में सुवर्णकूला-रूप्यकूला और ऐरावत् में रक्ता-रक्तोदा नदियां बहती हैं। भरतक्षेत्र 526 6/19 योजन विस्तारवाला है। विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र भरतक्षेत्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

भरत क्षेत्र

तीन और लवण समुद्र तथा एक ओर हिमवान् पर्वत के बीच में भरत क्षेत्र है। गंगा, सिंधु और विजयार्द्ध पर्वतों से विभक्त होकर इसके छह खण्ड हो जाते हैं। विजयार्द्ध पर्वत 50 योजन विस्तृत, 25 योजन ऊंचा, 6 1/4 योजन गहरा है एवं दोनों छोरों में पूर्व पश्चिम के लवण समुद्र को स्पर्श करता है। इसी पर्वत से गंगा और सिंधु निकली हैं। विजयार्द्ध पर्वत में सुन्दर लक्षणों से युक्त विद्याधर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थों को करते हुए रहते हैं। यहाँ के निवासी भी यद्यपि भरत क्षेत्र की तरह षट्कर्म से ही आजीविका करते हैं, किंतु प्रज्ञप्ति आदि विधाओं को धारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते हैं। विजयार्द्ध पर्वत में ऊँचाई की ओर विस्तृत व्यन्तर श्रेणियाँ हैं जिनमें उत्तम दिव्य रूप के धारी सौधर्म इन्द्र के वाहन जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। पर्वत के शिखर पर नौ कूट स्थित हैं। इन कूटों में उत्तम विद्याधर मनुष्य कामदेव के समान बहुत प्रकार की विद्याओं में संयुक्त हमेशा ही छह कर्मों से सहित हैं। इन विद्याधरों की स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश, दिव्य लावण्य से रमणीय और बहुत प्रकार की विद्याओं से समृद्ध हैं। यहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार की कुल विद्या, जाति विद्या और साधित विद्याओं के प्रसाद से हमेशा ही अनेक प्रकार के सुख का अनुभव करते रहते हैं।



विजयाङ्घ्र के दक्षिण में, लवण समुद्र के उत्तर में और गंगा-सिंधु नदियों के मध्य में आर्य खण्ड है। स्वर्ग, लक्ष्मी और मुक्ति के सुख का आधार यह उत्तम आर्य खण्ड ही है, अतः यहाँ आर्यजन अपने तपोबल से स्वर्ग ओर मोक्ष का साधन करते हैं। आर्यखण्ड के पूर्व-पश्चिम भाग में, विजयाङ्घ्र उत्तर दिशा में धर्म आचरण से रहित पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं, जिनमें धर्म-कर्म से बहिर्भूत, नीचकुल में समन्वित, विषयासक्त और दुर्गति पाने वाले म्लेच्छ जीव रहते हैं। आर्यखण्ड के मध्य में श्रेष्ठ अयोध्या नगरी है।

अन्य छह क्षेत्र :-

हेमवत् शाश्वत जघन्य भोगभूमि है। जो जीव यहाँ उत्पन्न होते हैं उन्हें दस प्रकार के कल्पवृक्ष संकल्प मात्र से 10 प्रकार के उत्तम भोग देते हैं। इसके बीच में शब्दवान् नाम का वृत् वेतादय पर्वत हैं। यह पर्वत क्षेत्र के ठीक मध्य में स्थित रहने के कारण एवं वृताकार होने के कारण इसे नाभिगिरी कहते हैं। हैरेण्यवत भी हेमवत् के समान जघन्य भोगभूमि है।

हरिक्षेत्र में सिंह के समान शुक्ल रूप वाले मनुष्य रहते हैं। इसके बीच में विकृतमान नाभि पर्वत है। इसमें अरुणदेव का विहार है। इसमें शाश्वतिक मध्यम भोगभूमि की रचना रहती है। रम्यक क्षेत्र हरि क्षेत्र के समान है।

विदेह क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा विदेह अर्थात् कर्मबंध उच्छेद के लिए यत्न करते रहते हैं। यहाँ कभी भी धर्म का उच्छेद नहीं होता। विदेह क्षेत्र पूर्व विदेह, अपर विदेह, उत्तर कुरु और देवकुरु, इन चार भागों में विभाजित है। विदेह के मध्य भाग में मेरु पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार वक्षार पर्वत हैं। उत्तर कुरु क्षेत्र में जामुन वृक्ष के आकार का शाश्वत पृथ्वीकाय एक महान जम्बूवृक्ष स्थित है। इस जम्बूवृक्ष की शाखाओं पर यक्ष कुल में उत्पन्न आदर, अनादर देवों के आवास हैं। सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशा में सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर देवकुरु क्षेत्र में शाल्मली वृक्ष है। यहाँ गरुड़ कुल में उत्पन्न वेणु नाम के महान देव निवास करते हैं।

विदेह क्षेत्र में वर्षा ऋतु में कुल 133 दिन मर्यादापूर्वक वर्षा होती है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता। पशु पक्षियों के रोग नहीं होते। ये देश, कुदेव, कुलिंग (अर्थात्, जिन लिंग से भिन्न लिंग) और कुमत से रहित तथा केवल ज्ञानियों, तीर्थकर आदि शलाका पुरुषों और ऋद्धि सम्पन्न साधुओं से निरन्तर समन्वित रहते हैं। प्रत्येक देश में एक-एक विजयाङ्घ्र पर्वत है। विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले निपूण जन धर्म के प्रभाव से 16 स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। कोई भद्र परिणामी गृहस्थ पात्रदान के प्रभाव से भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं, कोई बुद्धिमान जन जिनेन्द्र भगवान की पूजा, स्तुति एवं भक्ति के द्वारा इन्द्र पद प्राप्त करते हैं। बहुत प्रकार के भोगों को भोगने वाले जो विवेकी देव स्वर्ग में पूण्यकर्मा हैं, वे वहाँ से चय होकर स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धी के लिए विदेह क्षेत्रस्थ उत्तम कुलो में जन्म लेते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था धातकी खण्ड और पुष्करार्धगत विदेह क्षेत्रों में होती है।

उत्तर कुरु और देव कुरु उत्कृष्ट भोग भूमियाँ हैं। उत्तम क्षेत्र के सद्भाव से वहाँ के जीवों को रोग नहीं होता, न वहाँ भय है, न ग्लानि हैं, न अकाल मृत्यु है, न दीनता है, न वेदना है, न निहार होता है और न छह ऋतुओं का संचार होता है न अनिष्ट का संयोग होता है, न इष्ट का वियोग होता है न अपमान आदि का दुःख है और न ही अन्य किंचित द्रव्य वहाँ प्राप्त होते हैं। वे जीव कल्पवृक्षों से उत्पन्न होने वाले भोगों को निरन्तर भोगते हैं। वहाँ पर स्त्री पुरुष युगल रूप में एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ मरते हैं। भोग भूमि के जीव सरल परिणामी होने से मरण के बाद देवगति को ही प्राप्त करते हैं।

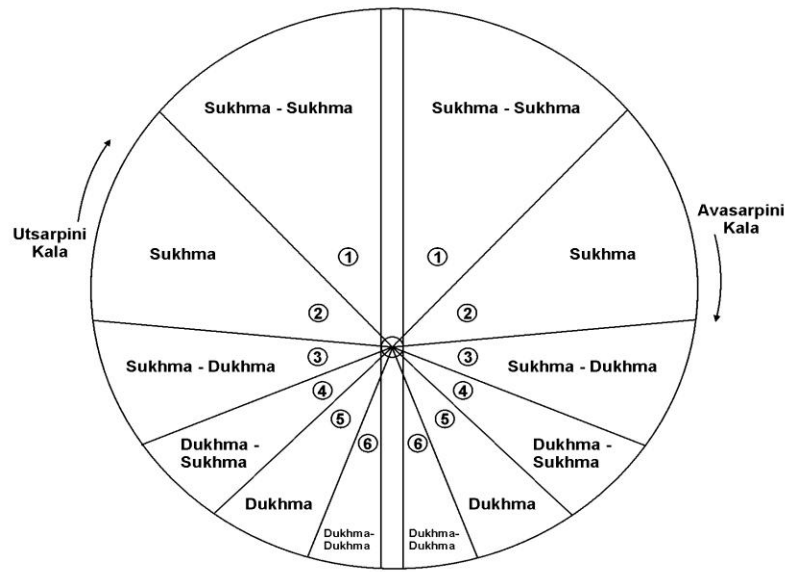
सुमेरु पर्वत

सुदर्शन मेरु की जड़ चित्रा पृथ्वी को भेदकर एक हजार योजन नीचे तक गई है। जड़ के नीचे मेरु का व्यास 10090 10/11 योजन और इसकी परिधि का परिमाण 31910 2/11 योजन है। पृथ्वी तल

पर मेरु की चौड़ाई 10000 योजन और परिधि का परिमाण लगभग 31623 योजन है। मेरु पर्वत की ऊंचाई 99000 योजन है और मुख 1000 योजन परिणाम है। मेरु पर्वत नीचे से 61 हजार योजन पर्यन्त अनेक वर्ण वाला है, इसके उपर पूरा सदृश वर्ण का है। सुमेरु पर्वत के तीन स्तर पर तीन वन—नन्दन वन, सौमन वन और पाण्डुक वन हैं जिनमें कई कूट हैं। नन्दन वन के कूट में बलभद्र नाम के व्यन्तर देव रहते हैं।

काल भेद

भरत और ऐरावत क्षेत्र में जीवों के अनुभव आदि को छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा वृद्धि तथा न्यूनता होती रहती है। अवसर्पिणी के छह भेद (आरा) है — (1) सुषमा—सुषमा (2) सुषमा (3) सुषमा—दुःषमा (4) दुःषमा—सुषमा (5) दुःषमा और (6) अतिदुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के भी अति दुःषमा आदि को लेकर छह भेद हैं (देखें चित्र 6.7)। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जाने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है।



अवसर्पिणी काल में समय बीतने के साथ-साथ मनुष्यों का आयुष्य, ऊंचाई और पृष्ठ—अस्थि की संख्या में हानि होती रहती है जैसा कि सारिणी-1 में दिखाया गया है। उत्सर्पिणी काल में आयु ,ऊंचाई पृष्ठ—अस्थि—संख्या आदि में क्रमशः वृद्धि होती है।

सारिणी 1 : प्रत्येक आरे के प्रारम्भ में आयुष्य आदि का मान

आरा—क्रमांक	आयुष्य	ऊंचाई	पृष्ठ—अस्थि—संख्या
1	3 पल्योपम	6000 धनुष्य	256
2	2 पल्योपम	4000 धनुष्य	128
3	1 पल्योपम	2000 धनुष्य	64
4	1 क्रोड—पूर्व	500 (525)* धनुष्य	48
5	130 वर्ष	7 हाथ	24
6	20 वर्ष	1 (3-31/2)* हाथ	12

* दिगम्बर—परम्परा के अनुसार

भरत और ऐरावत क्षेत्र संबंधी म्लेच्छखण्डों तथा विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में अवसर्पिणी काल के समय चतुर्थ काल के आदि से लेकर अन्त तक परिवर्तन होता है, और उत्सर्पिणी काल के समय तृतीय काल के अन्त से लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। (अर्थात् दुःषमा सुषमा काल ही बना रहता है।) इनमें आर्यखण्डों की तरह छहों कालों का परिवर्तन नहीं होता है और न इनमें प्रलयकाल पड़ता है। भरत और ऐरावत के सिवाय अन्य क्षेत्र एक ही अवस्था में रहते हैं — उनमें काल का परिवर्तन नहीं होता।

हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य तिर्यच्च क्रम से एक पल्प, दो पल्प और तीन पल्प की आयु वाले होते हैं। उत्तर के क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्य भी हैमवत आदि के मनुष्यों के समान आयुवाले होते हैं। अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्र की रचना हैमवत क्षेत्र के समान, रम्यक की रचना हरिक्षेत्र के समान और उत्तर कुरु (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत स्थान—विशेष) की रचना देव कुरु के समान है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप तीनों भोग भूमियों के दो दो क्षेत्र हैं। जिनमें सब तरह की भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है उन्हें भोग भूमि कहते हैं। जम्बूद्वीप में छह भोगभूमियाँ और अढाईद्वीप में कुल 30 भोग भूमियाँ हैं। विदेह क्षेत्रों में मनुष्य और तिर्यच्च संख्यात वर्ष की आयुवाले होते हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बेवां भाग है। पंचमेरु संबंधी पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डों में कालचक्र घटित होते हैं।

म्लेच्छ खण्डों में उपद्रव रहित अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल (दुःषमा—सुषमा) की वर्तना शाश्वत रहती है, वहाँ जीवों के काय, आयु एवं सुख आदि का वृद्धि—ह्रास होता है। वहाँ शेष कालों के सदृश वर्तना नहीं होती।

- उत्तर कुरु और देवकुरु नामक उत्तम भोग भूमियों में अवसर्पिणी के प्रथम काल के सदृश आयु, उत्सेध एवं सुख आदि की वर्तना होती है।
- हरि, रम्यक क्षेत्रों की दस मध्यम भोगभूमियों में अवसर्पिणी के द्वितीय काल के प्रारम्भ सदृश वृद्धि—ह्रास से रहित वर्तना होती है।
- हैमवत् और हैरण्यवत् श्रेत्रगत दस जघन्य भोग भूमियों में अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ सदृश शाश्वत वर्तना होती है।
- मानुषोत्तर पर्वत के बाहर और स्वयंभूरमण द्वीप के मध्य में अवस्थित नागेन्द्र पर्वत के भीतर—भीतर जघन्य भोग भूमि का वर्तन होता है।
- नागेन्द्र पर्वत के बाह्य भाग से अर्ध स्वयंभूरमण द्वीप में और स्वयं भूरमण समुद्र में अवसर्पिणी काल के पंचम काल के प्रारम्भ सदृश, हानि—वृद्धि रहित वर्तना होती है।
- चतुर्निकाय देवों के स्वर्ग में सुख के सागर स्वरूप सुषमा—सुषमा काल के सदृश ही नित्य वर्तन होता है।
- सातों नरक—भूमियों में नित्य ही असाता की खान दुःषमा—दुःषमा काल के सदृश वर्तन होता है।

देवों के भेद

देवों के चार भेद हैं — (1) भवनवासी (2) व्यंतर (3) ज्योतिष्क और (4) वैमानिक। सोलहवें स्वर्ग तक के देव पर्यन्त उक्त चार प्रकार के देवों के क्रमशः दश, आठ, पाँच और बारह भेद हैं। सभी चार प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, परिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभिभोग्य और कित्विषिक ये दस भेद होते हैं। व्यंतर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेद से रहित होते हैं। भवनवासी और व्यंतरों में प्रत्येक भेद में दो—दो इन्द्र होते हैं। इस प्रकार भवनवासियों के दश भेदों में बीस और व्यंतरों के आठ भेदों में सोलह इन्द्र होते हैं तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं।

भवनवासी देवों के असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुवर्ण कुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधि कुमार और दिककुमार ये दश भेद हैं। व्यंतर देवों के किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ भेद हैं। ज्योतिष्क देवों के सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारों के भेद से पाँच प्रकार हैं। ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक में मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए हमेशा गमन करते रहते हैं। घड़ी, घण्टा, दिन, रात आदि व्यवहार – काल का विभाग उन्हीं गतिशील ज्योतिष्क देवों के द्वारा किया गया है। मनुष्य लोक अढ़ाई द्वीप से बाहर के ज्योतिष्क देव स्थिर हैं।

विमान—जिसमें रहने वाले देव अपने को विशेष पुण्यात्मा समझे उन्हें विमान कहते हैं और विमानों में जो पैदा हों उन्हें वैमानिक कहते हैं। वैमानिक देवों के दो भेद हैं – (1) कल्पोपन्न और (2) कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदों की कल्पना होती है ऐसे सोलह स्वर्गों को कल्प कहते हैं, उनमें जो पैदा हो उन्हें कल्पोपन्न कहते हैं। जो सोलहवें स्वर्ग से आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं। सोलह स्वर्गों के आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर ये सब विमान क्रम से ऊपर ऊपर हैं। सौधर्म ऐशान, सानत्कुमार—माहेन्द्र, बह्म—बह्मोत्तर, लान्तव—कापिष्ठ, शुक्र—महाशुक्र, सतार—सहस्त्रार इन छह युगलों के बारह स्वर्ग में, आनत—प्राणत, इन दो स्वर्गों में, आरण—अच्युत इन दो स्वर्गों में, नव ग्रैवेयक विमानों में, नव अनुदिश विमानों में और विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थ सिद्धि इन पाँच अनुत्तर विमानों में वैमानिक देव रहते हैं। वैमानिक देव—आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अधिज्ञान का विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपर विमानों में अधिक अधिक है। ऊपर ऊपर के देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा हीन हीन है। सोलह स्वर्ग से आगे के देव अपने विमान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते। नवग्रैवेयक वगैरह के देव एक समान वैभवधारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं। ब्रह्मलोक के देव लौकान्तिक देव हैं। सारस्वत, आदित्य, वहनि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट ये आठ लौकान्तिक देव हैं। वे ब्रह्मलोक की ऐशान आदि आठ दिशाओं में रहते हैं। विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा अनुदिश विमानों के अहमिन्द्र द्विचरम होते हैं, अर्थात् मनुष्यों के दो जन्म लेकर नियम से मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु सरवार्थ सिद्धि के अहमिन्द्र एक भवावतारी ही होते हैं।

ज्योतिर्लोक

जो ज्योतिर्मय होते हैं, उसको ज्योतिष्क कहते हैं। ज्योतिष्क देवों के पाँच प्रकार हैं – (1) चंद्र (2) सूर्य (3) ग्रह (4) नक्षत्र (5) प्रकीर्णक तारा। ये पाँचों लोक के अंत में धनोदधिवातवलय का स्पर्श करते हैं अर्थात् पूर्व—पश्चिम की अपेक्षा धनोदधिवातवलय तक ज्योतिष्क देवों के विमान हैं। जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण अर्थात् असंख्यात द्वीप समुद्र पर्यन्त ज्योतिष्क देव रहते हैं। ढाई उद्धार सागर रोम के परिमाण द्वीप समूह की संख्या हैं। सूर्य और चंद्र की किरणें समान नहीं हैं।

ज्योतिष्क देव के इन्द्र चन्द्र हैं एवं प्रतिइन्द्र सूर्य है एक चन्द्रमा के परिवार में 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 66775X10¹⁴ तारागण हैं। जम्बूद्वीप में 2 चन्द्रमा एवं 2 सूर्य हैं। लवणोदक समुद्र में 4 चन्द्र 4 सूर्य हैं। तथा धातकी खण्ड में 12 चन्द्र एवं 12 सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में 42 चन्द्र तथा 42 सूर्य हैं। अर्धपुष्कर द्वीप में 72 चन्द्र एवं 72 सूर्य है। जम्बूद्वीप में 36 ध्रुवतारा, लवणोदक समुद्र में 139 ध्रुवतारा, धातकी खण्ड में 1010 ध्रुव तारा, कालोदक में 41120 ध्रुवतारा तथा पुष्करार्ध में 35230 ध्रुवतारा हैं।

ज्योतिष्कदेव मेरु की प्रदक्षिणा करके नित्य भ्रमण करते हैं। इनकी गति के अनुसार दिन—रात्रि आदि काल विभाग होता है। ज्योतिष्क देवों के समूह मेरु पर्वत को 1121 योजन छोड़कर प्रदक्षिणा रूप से गमन करते हैं। चन्द्र, सूर्य एवं ग्रह को छोड़कर शेष सभी ज्योतिष्क देव एक ही पथ में गमन करते हैं। चन्द्र, सूर्य एवं ग्रह के अनेक गति पथ हैं।

चन्द्र सूर्य के गमन क्षेत्र की गली को चार क्षेत्र कहते हैं। यह चार क्षेत्र सूर्य बिंब (विस्तार) के परिमाण 510 योजन है। जम्बूद्वीप के चार क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप में मात्र 180 योजन ही है, शेष 330 योजन विस्तार लवण समुद्र में है। पुष्करार्ध पर्यन्त अवशेष द्वीप समुद्र संबंधी सूर्य-चन्द्र अपने-अपने क्षेत्र में ही विहार करते हैं।

संदर्भ

- 1 षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा, डॉ. नारायण लाल कछारा, 2007
- 2 विश्व विज्ञान रहस्य, आचार्य कनकनंदी, 1991
- 3 स्वतंत्रता के सूत्र, आचार्य कनकनंदी, 1992
- 4 मोक्ष शास्त्र (तत्त्वार्थ सूत्र), पं. पन्नालाल जी 'बसन्त', 1978
- 5 विश्व प्रहेलिका, मुनि महेन्द्रकुमार, 1969